

## ‘भाषा और अधिगम’ के साथ सीखने की एक यात्रा रवि कांत

पुस्तक समीक्षा में इस बार जेम्स ब्रिटन की पुस्तक ‘भाषा और अधिगम’ की समीक्षा है। भाषा की आम समझ भाषा को सिर्फ अभिव्यक्ति के माध्यम तक समेटकर रख देती है। इसका नतीजा होता है कि स्कूल में भाषा शिक्षण में भाषा के वे वृहत्तर कार्य आ ही नहीं पाते। जेम्स ब्रिटन अपनी पुस्तक में भाषा के अन्य प्रकार्यों की चर्चा करते हैं जो कि विचार करने और वास्तविकता का प्रतीकीकरण आदि हैं।

**क**रीब एक साल से यह किताब मेरे संग-संग यात्राएं कर रही है। इस उम्मीद में कि, मैं इसके साथ ठीक से बतिया सकूं। ठीक वैसे ही जैसे किसी पुराने दोस्त से मिलने पर धीरज के साथ चाय पीते हुए या सर्दी के दिनों में सिकी हुई मूंगफली के साथ गुड़ की डली खाते हुए बतियाया जाता है।

मेरी और इस किताब की बातकही ने मेरे धीरज का बड़ा ही कड़ा इम्तिहान लिया। हर बार जैसे ही हमारी बात की शुरुआत होने लगती कि थोड़ी ही देर बाद मुझ पर झुंझलाहट-सी हावी होने लगती। यह किताब किस भाषा में बोलती है ? कभी तकनीकी शब्दों की भरमार से उलझन होती तो कभी उनका अनुवाद परेशान करता। कभी देवनागरी लिपि में लिखे अंग्रेजी के वाक्य रुकावट डालते तो कई बार पैरा दर पैरा पढ़े जाने के बावजूद पता नहीं चलता कि कहे गए का मतलब क्या है? कई जगह पर हिंदी के शब्द आसानी से समझ आते तो पता चलता कि उसी के बगल में बनी कोठरी में उसी का अंग्रेजी सहोदर भी बैठा हुआ है। बार-बार किताब को उलटते-पुलटते और इसे पढ़ने की कोशिश करते हुए लगा कि आमुख में कृष्ण कुमार द्वारा लिखी गई टिप्पणी ‘यह निश्चित है कि जो भी पाठक इस किताब को आरंभ से अंत तक पढ़ेगा, निश्चित ही उसके मन में भाषा के, प्रचुर मात्रा में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधन को बच्चे और देश दुनिया की सांस्कृतिक संपन्नता के हित में इस्तेमाल करने की इच्छा अवश्य उत्पन्न होगी।’ (पृ.11) जो कि मूलतः किताब के महत्त्व को रेखांकित करने के लिए की गई है लेकिन अनुवाद के संदर्भ में उसकी पहली पंक्ति अतिरिक्त सार्थकता ग्रहण कर लेती है। यानी पाठक को अनुदित किताब पूरी करने के लिए अतिरिक्त मेहनत, एकाग्रता व प्रेरणा की जरूरत पड़ेगी।

लेकिन पढ़ने में आने वाली तमाम दुश्वारियों के बावजूद यह किताब जादुई निकली। मुझे पता ही नहीं चला और मेरे काम में ऐसी बातें झलकने लगीं जिनका जिक्र यह किताब करती थी। शिक्षकों के साथ की जाने वाली बातचीत में स्कूल में आने से पहले सीखी जा चुकी मौखिक भाषा यानी बोलना सीखने का स्वरूप बेहतर ढंग से उभर कर आने लगा। भाषा के मुख्य कामों और भाषा सिखाने के मुख्य तरीकों को लेकर बनने वाला ढांचा ज्यादा साफ ढंग से उभर कर सामने आने लगा और भाषा का आखिर हम करते क्या हैं और भाषा हमारे साथ क्या करती है, इसे मैं थोड़ा और बेहतर ढंग से समझने लगा।

### लेखक परिचय :

प्रारंभिक शिक्षा में शिक्षक शिक्षा, शिक्षण सामग्री, पाठ्यपुस्तक निर्माण, शिक्षाक्रम और अनुवाद के क्षेत्र में हाल-फिलहाल विभिन्न संस्थाओं के साथ बतौर शैक्षिक सलाहकार कार्यरत।

### सम्पर्क :

68 ए, पुरुषार्थ नगर बी, जगतपुरा, जयपुर-25  
ई मेल : ravikant@gmail.com

इस किताब का शीर्षक बरबस ही हमारा ध्यान खींचता है। भाषा और अधिगम यानी भाषा और सीखना। सीखना को अधिगम कहने के पीछे प्रकाशक या अनुवादक की अलग-अलग मान्यताएं रही हो सकती हैं पर शिक्षा की तकनीकी शब्दावली से अपरिचित व्यक्ति के लिए किताब का यह प्रवेश द्वार कुछ हद तक बंद ही रह जाएगा। भले ही जेम्स ब्रिटन का उद्देश्य इस किताब को उन पाठकों के लिए लिखना रहा हो जो किसी कारण से बच्चों और किशोरों की बातों पर कान देना चाहते हैं। किताब का नाम हमें यह याद दिलाता है कि 'भाषा' और 'सीखना' दो अलग-अलग क्षेत्र हैं और भाषा सिखाने का काम करने वालों को पहले भाषा और सीखने और इसके साथ ही दोनों के बीच के आपसी संबंधों को बेहद संजीदगी और बारीकी के साथ समझने की जरूरत है। बच्चों से जुड़े लोगों - आधी दुनिया प्राकृतिक कारणों से और आधी पैतृक कारणों से - के लिए यह इसलिए भी जरूरी है क्योंकि एक वक्त तक तो खुद भाषा को सीखना और इसके साथ व इसके बाद दुनिया भर की चीजों को सीखने में भाषा का उपयोग करना जिस्मानी तौर पर इंसान के लिए दिमागी तौर पर इंसान बनने के लिए जरूरी है।

इस किताब को मुख्यतः दो हिस्सों में बांटकर देखा जा सकता है। पहले हिस्से में अध्याय एक, तीन और पांच को लिया जा सकता है। अध्याय एक में किताब के आधारभूत सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है और उसके आधार पर भाषा की तीन मुख्य भूमिकाओं - प्रतिभागी, दर्शक और भाषा व चिंतन - पर विस्तार से विचार अध्याय तीन और पांच में किया गया है। और दूसरे हिस्से में अध्याय दो, चार और छह को लिया जा सकता है। उनमें सबसे पहले बोलना सीखने को, उसके बाद स्कूल में किए जाने वाले कामों को और आखिरी अध्याय में किशोरावस्था के दौरान भाषा के उपयोग पर बात की गई है। दोनों हिस्से किताब में साथ-साथ चलते हैं। पहले हिस्से में भाषा और सीखने का सैद्धांतिक ढांचा खड़ा किया गया है और दूसरे हिस्से में इसी के साथ-साथ इंसान के भाषा सीखने की प्रक्रिया को मोटेतौर पर तीन हिस्सों में बांटकर देखा गया है।

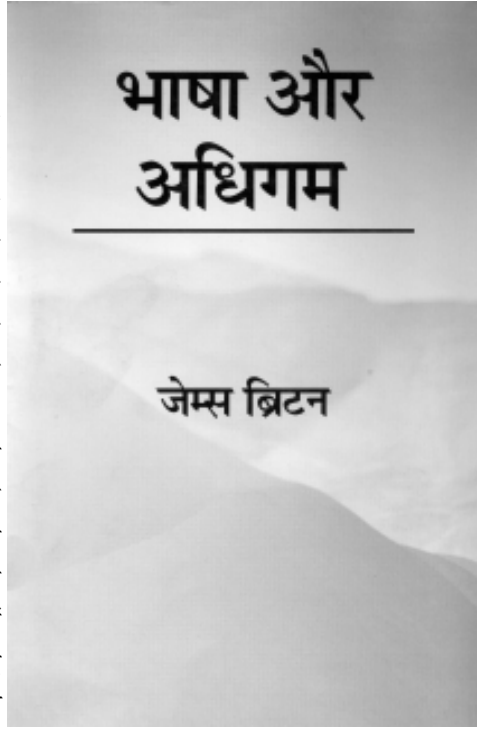
इस किताब की एक बड़ी खूबी यह है कि यह अपने सैद्धांतिक ढांचे के अंतर्गत कही जा रही बातों की व्याख्या या विश्लेषण या अर्थ उद्घाटन आदि के लिए आम जीवन में विभिन्न उम्र के बच्चों द्वारा बोली या लिखी जाने वाली भाषा के उदाहरण भी लेती है और उन उदाहरणों की मदद से अपने सिद्धांतों को सरल ढंग से समझाती हुई चलती है।

आप यदि छोटे बच्चों को पढ़ना-लिखना सिखाने का बोझ ढो रहे कंधों पर रखे सिरों से पूछें कि भाषा हमारे क्या काम आती है तो उनमें से ज्यादातर तुरंत यह बोल पड़ेंगे कि विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए। आप थोड़ा और जोर देंगे तो अभिव्यक्ति की बात भी इसमें और जोड़ दी जाएगी। मात्र विचारों के आदान-प्रदान या संप्रेषण को भाषा का मुख्य प्रकार्य मानने वाले व्यक्तियों को झकझोरने के लिए पहले ही अध्याय में भाषा वैज्ञानिकों के काम की मदद से ब्रिटन ने अपनी किताब के आधारभूत सिद्धांत को गढ़ा है - 'भाषा का सर्वप्रमुख कार्य वास्तविकता का प्रतीकीकरण है।' और इसके आधार पर भाषा की तीन भूमिकाएं निर्धारित की हैं जो इस प्रकार हैं-

पहली, रोजाना के जीवन में भागीदारी  
दूसरी, जीवन के दर्शक के रूप में  
तीसरी, जीवन के अनुभवों से उत्पन्न भावों और विचारों की अभिव्यक्ति

आमुख में ही कृष्ण कुमार इस ढांचे की तारीफ में कहते हैं कि स्कूल में भाषा के शिक्षण के दृष्टिकोण से दूसरी और तीसरी भूमिकाएं विशेष महत्त्व रखती हैं क्योंकि उसके अंतर्गत पहली भूमिकाओं से उत्पन्न सामान्य क्षमताओं को मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक गहराई देना संभव होता है।

इस ढांचे में इस बात को बहुत जोर देकर कहा है कि भाषा की जड़ें प्रत्यक्ष अनुभव में होती हैं। और इससे यह नतीजा भी निकाला गया है कि प्राथमिक स्तर पर बातचीत और क्रियाकलाप पर सबसे अधिक बल देना चाहिए। भाषा की जड़ें प्रत्यक्ष अनुभव से ही विकसित होनी चाहिए। अपने स्थानीय जीवन से कटी मानक भाषा सिखाने में और अंतर्राष्ट्रीय संपर्क भाषा व ताकत की भाषा



पुस्तक लेखक : भाषा और अधिगम  
जेम्स ब्रिटन  
प्रकाशक : ग्रंथ शिल्पी (इं.) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली  
प्रकाशन वर्ष : 2006  
मूल्य : 450 रुपये (सजिल्द)

के नाम पर अंग्रेजी रटवाने में जुटे तमाम स्कूली तंत्रों और उनसे जुड़े व्यक्तियों को यह बात इस चीज को फिर से याद दिलाती है कि जिंदगी के अनुभवों से काटकर व्यक्तियों का विकास करने की कोशिश कभी भी सफल न होने वाली परियोजना है।

बहुतेरे व्यक्तियों को यह लगता है कि इंसानों की तरह ही जानवरों की भी भाषा होती है और यह हमारी कमजोरी है कि हम उसे बोल या सुन व समझ नहीं पाते। ब्रिटन इंसानों को जानवरों से अलग करने के लिए दो विशेषताएं चुनते हैं जिसमें पहली, 'बोलना' और दूसरी 'तार्किक होना' है। और कहते हैं कि भाषा का प्रयोग करने के कारण मानव किसी भी अन्य जंतु की अपेक्षा बड़ी संख्या में कोटियों का प्रयोग कर सकता है। भाषा हमारे वर्गीकरण का प्रमुख माध्यम है। और यही कोटि निर्धारण प्रकार्य आगे चलकर अनुभव के निरूपण की संगठनात्मक भूमिका में सहायक होता है। वैसे तो अपने अनुभवों का खुद के लिए निरूपण के लिए हमारे पास और भी पद्धतियां हैं लेकिन भाषा उन सबसे बेहतर इसलिए है क्योंकि ब्रिटन की राय में,

भाषा सुसंगठित होती है।

भाषा अनुभव के निरूपण का सुव्यस्थित माध्यम है और

अन्य समस्त निरूपण पद्धतियों को व्यवस्थित करने में हमारी सहायता करती है।

हम सभी भाषा सीखने के आरंभ में बोलना सीखते हैं इस वजह से भी बोलना सीखने पर इस किताब में बहुत ही विस्तार से विचार किया गया है। बोलना हम आमतौर पर अपने घर-परिवार-समाज में रहते-रहते सीख जाते हैं इसलिए ज्यादातर हम सब इस पर गहराई से विचार नहीं करते। यदि आप शिक्षा में काम करने वाले व्यक्तियों या बच्चों के माता-पिताओं से पूछें कि हमारे बच्चे बोलना कैसे सीखते हैं ? तो उनका बेहद सीमित-सा जवाब होता है कि नकल करके, सुन करके आदि। चूंकि अपनी-अपनी मातृभाषा इंसानी समाजों में इतनी रची बसी होती है कि उसे सीखने की प्रक्रियाएं और उसके विभिन्न पहलू हमारी आंखों से प्रायः ओझल ही रहते हैं।

बोलना सीखने में सबसे जरूरी काम बातचीत को सुनना और देखना है भले ही खुद बच्चा बातचीत करने में सक्षम हुआ हो या नहीं। बच्चा उनमें से कुछ आवाजों को पसंद करने व याद रखने लगता है। और उससे बात करने वाले व्यक्तियों के क्रियात्मक शब्दों पर खुशी जाहिर करने लगता है। इसके साथ ही सीखने वालों में जिज्ञासा एवं धैर्य और सिखाने वालों में बहुत ही धैर्य एवं सद्भावना

न हो तो भी बोलना सीखना मुश्किल काम हो सकता है।

हमारा ध्यान इस बात पर भी कम ही जाता है कि अधिकांश बच्चे बोलना सीखने से पहले ही निर्देशों का पालन करना आरंभ कर देते हैं। और फिर ध्वनियों के साथ खिलवाड़ करना शुरू कर देते हैं। और हम सब इस खिलवाड़ का लुत्फ बच्चों के साथ खुद को शामिल करके उठाते हैं। लेकिन स्कूल में आने पर पढ़ना-लिखना सिखाते समय इस भाषाई खिलवाड़ को कक्षा से सिरे से निकाल बाहर करते हैं।

बच्चों या बड़ों की आपसी बातचीत को अनुशासन हीनता मानकर उनके मुंह पर ताला जड़ने में कुशल हो चुके शिक्षकों और प्रशिक्षकों की पीढ़ियों को यह बात बेहद परेशान कर सकती है कि ब्रिटन यह दावा करते हैं कि शैशवावस्था के दौरान अधिगम का एक महत्वपूर्ण उपकरण है - 'बातचीत' और बातचीत करना बातचीत करके ही सीखा जा सकता है तथा बातचीत करना प्राथमिक विद्यालयों में भाषा सिखाने के सबसे मुख्य कामों में से एक है। यानी कभी डंडे के जोर से, कभी कुर्सी के जोर से, कभी बड़ी उम्र या ज्यादा ज्ञान और अनुभव के हवाले से हम बच्चों की बोलती बंद करने में लगे पड़े हैं तब हम नहीं जानते कि हम उनके सीखने की हजार राहों में रोड़े अटका रहे हैं। इसी तरह साल में एक-आध बार चुनिंदा बच्चों से नाटक रटवा कर और उसे दर्शकों को दिखवा कर अपने 'नाटकीय कर्तव्य' की इतिश्री समझने वालों को इस बात से भी संभवतः अचरज हो कि ब्रिटन 'नाटकीय क्रीड़ा' को भी विद्यालय में की जाने वाली महत्वपूर्ण गतिविधि मान कर उसकी विवेचना करते हैं।

प्राथमिक शिक्षा में भाषा सिखाने का सबसे मशहूर तरीका हम सब जानते हैं। जिसमें सबसे पहले वर्णमाला, बिना मात्रा के शब्द, मात्राएं, मात्रा वाले शब्द, बारहखड़ी, वाक्य, अनुच्छेद और फिर उसका अर्थ निकालना या संक्षेप में कहें तो पहले पढ़ना फिर लिखना और आखिर में उसका अर्थ निकालना। यानी अर्थ निकालना भाषा सिखाने के सबसे आखिरी पायदान पर होता है। और पढ़ना-लिखना सीखने का 'सश्रम कारावास' आमतौर पर इतना लंबा होता है कि कई बच्चे आखिरी पायदान तक पहुंचने से पहले ही भाग छूटते हैं और बाकी में से कई पढ़ी हुई चीज को अर्थ से जोड़ने में कामयाब नहीं हो पाते। यह किताब पढ़ते समय उस कारावास के कई घावों को हरा भी कर देती है। जब हम किताब में लिखी बात की नकल तो कर देते हैं पर उसे समझ कर अपनी भाषा में कहते समय मुश्किल में पड़ जाते हैं या कई बार अपने ही अनुभवों या विचारों को व्यक्त करने में परेशानी का सामना करना पड़ता है।

तमाम राजकीय और गैर-राजकीय शिक्षक प्रशिक्षणों और

उन्हें सु या कुचालित करने वाले विभिन्न स्तरीय व्यक्तियों की बहुधा यह मांग रहती है कि उन्हें कुछ ट्रिक्स या गुर या टिप्स पकड़ा दिए जाएं ताकि वे जितना हो सके उनका उपयोग कर अपने स्कूलों में शिक्षण को बेहतर बना पाएं। यह किताब ऐसे व्यक्तियों या स्थानों को कुछ दे पाने में नितांत असफल है। लेकिन यह ऐसे कई कीमती विचारों को पाठकों के सामने इतनी मजबूती से रखती है कि पाठक की शिक्षण और खासतौर पर भाषा शिक्षण से जुड़ी वैचारिक इमारत की चूलें हिलने लगती हैं। जैसे,

यह हमारे राष्ट्र (ब्रिटेन) के लिए गर्व की बात है कि हमारे शिशु विद्यालयों में बच्चों का दिन का बहुत ही कम समय डेस्क पर बैठकर बीतता है। (पृ.126)

विद्यालयों में बालकों का भाषा का प्रयोग सक्रियात्मक होना चाहिए न कि 'तोता रटंत'। (पृ.127)

सभी भाषाएं परिवर्तित, विकसित होती रहती हैं। (पृ.131)

प्राथमिक विद्यालय के स्तर पर बातचीत और क्रियाकलाप पर सबसे अधिक बल देना चाहिए। भाषा की जड़ें प्रत्यक्ष अनुभव से ही विकसित होनी चाहिए। (पृ.134)

यह एक सामान्य समझौता है कि प्राथमिक स्तर पर लिखे हुए नाटकों का माता-पिता और दोस्त दर्शकों के लिए मंचन करना बहुत कम उपयुक्त गतिविधि है। वास्तव में ये नाटक के उन पक्षों के विरोध में खड़े होते हैं जो इस अवस्था में शैक्षिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। (पृ.139)

वास्तव में मेरा तो यह विश्वास है कि ग्यारह वर्ष की उम्र तक उनकी (यानी बच्चों की) कविता सुनने की स्वर्णिम आयु होती है। (पृ.153)

एक सुनिश्चित जिज्ञासात्मक प्रश्नपरक सुर - 'इसका क्या अर्थ हो सकता है?' बोधगम्यता का दुश्मन है। इसे ऐसे पढ़िए कि भाव व्यक्त करे, संभवतः यह व्यक्त भी करेगा। (पृ.158)

सर्वाधिक सशक्त शब्द वे नहीं होते जिनका अर्थ सुनिश्चित होता है। (पृ.160)

(विद्यालय के) गलियारों और खेल के मैदानों में भाषा एक आक्रामक हथियार है। (पृ.178)

यह जानना कइयों के लिए बेहद रोमांचक हो सकता है कि भाषा कैसे-कैसे हमारे जीवन में अपने उपयोग के स्वरूप को बदलती जाती है। इस स्वरूप को बदलने के साथ पुराना स्वरूप तो बरकरार रहता है लेकिन नया स्वरूप भी जुड़ जाता है। आरंभ में भाषा

सीखने के वक्त हम इसका उपयोग रोजाना के जीवन में प्रतिभागी के तौर पर अपनी भागीदारी करने के लिए करते हैं। फिर हम दर्शक के तौर पर भी इसका उपयोग करने लगते हैं। और आखिर में हम चिंतन करने में इस औजार को काम लेने लगते हैं। इन तीनों को हम नितांत अलग तो नहीं कर सकते पर उम्र के अलग-अलग हिस्सों में अलग-अलग स्वरूपों के विकास की प्रमुखता को पहचान सकते हैं। इसी बात को आखिर में ब्रिटन ने किशोरावस्था की बात करते हुए यह कह कर किया है कि 'किशोरावस्था में होने वाले परिवर्तनों के एक प्रमुख पक्ष अपने प्रारंभिक 'चित्र' में एक तीसरी चीज जोड़ना यानी वस्तु संसार (वर्ल्ड ऑफ ऑब्जेक्ट्स) और व्यक्ति संसार (वर्ल्ड ऑफ पीपल) में वैचारिक विश्व (वर्ल्ड ऑफ आइडियाज) को जोड़ना।

इस बात की थोड़ी कल्पना करना भी रोचक हो सकता है कि भाषा के जरिए हम अपने भीतर पहले वस्तुओं की दुनिया रचते हैं फिर उसमें व्यक्ति शामिल होने लगते हैं और सबसे आखिर में उस दुनिया में विचारों के जमावड़े लगते हैं उनमें उधेड़बुन होने लगती है। इसे बाहरी दुनिया के विकास की अवधारणा के साथ मिलाकर देखें तो हम पाते हैं कि वहां भी पहले वस्तुएं ही थीं फिर उसमें प्राणियों का विकास हुआ और उनमें से एक प्राणी इंसान के रूप में विकसित हुआ जिसने किसी वजह से विचार करना और वह भी भाषा की मदद से आरंभ किया।

आखिरी हिस्से में यह किताब उन शाश्वत प्रश्नों से जूझती है जिनसे हम सभी अपनी किशोरावस्था में कभी न कभी दो-चार हो चुके होते हैं। जैसे खुद के वैयक्तीकरण और समाजीकरण के बीच कैसे तालमेल बिठाएं? किस मानवीय संबंधों के जाल के साथ खुद को जोड़ें और किससे दूर रहें? अपनी असमंजसता से कैसे बाहर निकलें या उसे कैसे समझें? और इन सवालियों के साथ जूझते हुए किशोरावस्था में चिंतन में परिपक्वता की शुरुआत होती है जिसे ब्रिटन स्वचिंतन पर चिंतन करने यानी विश्लेषण करने की क्षमता कहते हैं। और इसमें अनुभव के अलग-अलग स्रोतों से मदद मिलती है। ब्रिटन पुस्तकों के अलावा फिल्म, टेलीविजन और नाटक को भी किताब के समान स्रोत मानते हैं औरों से भी मानने का आग्रह करते हैं। ब्रिटन का यह सुझाव कि, अनुभव उपलब्ध करवाने की दृष्टि से जीवित लेखकों, निर्देशकों अथवा नाटककारों का कोई भी सानी नहीं है, हमारे स्कूलों के दरवाजे साहित्यकारों और नाटककारों या निर्देशकों के लिए खोलने की राह दिखाता है और बदलने की हर आहट के प्रति आंखे मूढ़ें तंत्र के विशालकाय अजगरनुमा जिस्म में हल-चल की थोड़ी बहुत संभावनाओं की तरफ इशारा करता है। ♦